आईने में अक्स :

प्राथमिक विद्यालयों में लैंगिक (जेण्डर) समाजीकरण

नन्दिनी भट्टाचारजी

पुरुषों और स्त्रियों के बीच के ज्यादातर अंतर सामाजिक जीवन द्वारा बनाए गए हैं और प्राकृतिक नहीं हैं। महिलाएं बहुत से बंधन और बाधाएं झेलती हैं जिन्हें पुरुष नहीं झेलते। नन्दिनी भट्टाचारजी एक संवेदनशील तरीके से वर्णन करती हैं कि किस प्रकार प्राथमिक स्कूल में जेण्डर का सामाजिक निर्माण होता है।

''एक गजब का सुस्त देश !'' रानी ने कहा। ''अब, तुम यहां पर ऐसे समझो कि, इतना जो दौड़ना पड़ता है, वह अपनी ही जगह पर बने रहने के लिए है। अगर तुम कहीं और जाना चाहती हो तो तुम्हें कम से कम दुगुना तेजी से दौड़ना पड़ेगा।

(लुइस कैरॉल, आईने में)

भारतीय विद्यालयों में बच्चे 'लैंगिकता' के बारे में कैसे 'सीखते' हैं, इसको समझने में मदद करने के लिए जीवनियों व किस्सों के अलावा बहुत ही कम चीजें मिलती हैं। खासतौर पर लड़कियों व औरतों की गैर-मौजूदगी और भाषा व थीमपरक विषयवस्तु में लैंगिक पूर्वाग्रहों व भेदभाव को उजागर करने के लिहाज से पाठ्यपुस्तकें शोध के ध्यान का केन्द्रबिंदु बनी हैं। फिर भी, यह दर्ज किया जाना जरूरी है कि ऐसे मूल्य और मानक हैं जो विद्यालयों में पाठ्यपुस्तकों के अलावा भी फैलाए जाते हैं। पाठ्यपुस्तकों, सांस्थानिक नियम-कायदों, रिवाजों व रोजमर्रा के कामकाजों में शामिल संदेशों के साथ ही शिक्षण प्रक्रियाओं में भी विद्यालयीकरण का 'छुपा' हुआ शिक्षाक्रम घेरा बना लेता है। (एपल, 1979)। 'छुपे' हुए शिक्षाक्रम की अवधारणा हमें इस हकीकत के प्रति संवेदनशील बनाती है कि ये 'गैर-इरादतन व्यवहार' दुनिया के बारे में बच्चों की समझ बनाने में और दुनिया में सामाजिक संगठनों व सामाजिक संबंधों के एक आयाम के तौर पर लैंगिकता की समझ बनाने में भागीदारी निभाते हैं।

रोजमर्रा के विद्यालयी जीवन में औरतपन व मर्दपन को गढ़ने वाले, विद्यालय के अंदर होने व्यवहारों के प्रतिरूप लैंगिकता के छुपे शिक्षाक्रम के लिए पृष्ठभूमि का काम करते हैं। ये प्रतिरूप एक तरह के लैंगिक 'नियम-कायदे' गढ़ते हैं (मैक्डोनाल्ड, 1980)। ये लैंगिक कायदे किसी खास विद्यालय के अंदर सभी सामाजिक अभिनेताओं के लिए 'लैंगिक तौर पर वाजिब' व्यवहार के संकेतों को मुहैया करवाते हैं। विद्यालयी बच्चों के लिए, लैंगिक नियम-कायदों के 'सुरागों को तलाशने' में विद्यालय के अंदर सामाजिक मेलजोल के संदर्भों में लैंगिकता को

देख-सुन कर समझना शामिल होता है। बच्चा अपनी लैंगिक पहचान को संस्थागत तौर पर विद्यालय की 'छोटी-सी दुनिया' में 'लैंगिक चश्मे' की मदद से देखता-समझता है- उस लैंगिक चश्मे से जो रोज-ब-रोज के विद्यालयी जीवन में आमतौर पर होने वाले व्यवहारों, रोजमर्रा के कामकाजों व रिवाजों से बनता है। लैंगिक समाजीकरण बेखबर विषयों पर लैंगिक नियम कायदों को 'कबूल कर लेने' से ही नहीं, बल्कि विद्यालय के लैंगिक नियम कायदों में बच्चों की सक्रिय भागीदारी के जरिए होता है।

इस अध्याय में इस तरह के समाजीकरण की अवधारणा बनाने के लिए अनुभवजन्य सबूतों का इस्तेमाल किया गया है। यहां पर एक प्राथमिक विद्यालय के संदर्भ में, लड़के व लड़कियों के समकालीन समाजीकरण में पाए जाने वाले कुछ प्रतिरूपों का विवरण दिया गया है। मैंने यह दिखाने की कोशिश की है कि इस विद्यालय के खास सांस्कृतिक संदर्भों के बीच कैसे रोजमर्रा के व्यवहारों और मेलजोल से बच्चों में 'लैंगिकता' की रूपरेखाएं परिभाषित होती हैं। विद्यालय जीवन के रोजमर्रा के संदर्भों और उन संदर्भों में बच्चों के जवाबों (शाब्दिक व अशाब्दिक) के विवरण के जरिए मैंने यह दिखाने की कोशिश की है कि बच्चे इन रूपरेखाओं के साथ कैसे तालमेल बिठाते हैं ताकि वे अपने लैंगिक समुदाय के एक 'आम' काबिल सदस्य के तौर पर नजर आ सकें।

बच्चे व शिक्षक

इस अध्ययन में ज्यादातर बच्चे राजस्थान, उत्तर प्रदेश, पंजाब, मध्य प्रदेश, बिहार और महाराष्ट्र राज्यों से आए पहली पीढ़ी के शहरी आप्रवासी थे। उनके पिताओं का काम-धंधा सब्जी बेचने, बढ़ईगिरी, टाइल पालिश करने, ट्रक चलाने, फैक्ट्री मजदूरी, चौकीदारी तथा छोटी-मोटी दुकानदारी का था। घरेलू नौकरानी का काम करने वाली कुछ औरतों को छोड़कर ज्यादातर की माताएं घर के बाहर कोई काम नहीं करती थीं। लगभग सभी मामलों में, दोनों ही अभिभावकों ने कुछ सालों की औपचारिक विद्यालयी शिक्षा हासिल की थी, कुछ माताएं कभी विद्यालय नहीं गई थीं। बहुत से बच्चों के भाई-बहन उसी विद्यालय में या अड़ोस-पड़ोस के ही किसी निजी हिंदी माध्यम के विद्यालय में थे; और कुछ बच्चे दो-तीन किलोमीटर की दूरी पर बसी आवासीय बस्ती से आते थे। उन बच्चों के लिए विद्यालय के अंदर और उसके निकट के पड़ोस में होने वाले सामाजिक मेलजोल में करीबी कड़ियां जुड़ी थीं।

जिन दो कक्षाओं का मैंने अवलोकन किया वे शिक्षक-निर्देशित कक्षा प्रबंधन की दो अतिरेकपूर्ण शैलियों की नुमांइदगी करती थीं; लेकिन दोनों ही 'भीड़ पर काबू पाने' के सिद्धांत पर टिकी थीं। 4 अ की शिक्षिका सुश्री एस. 'छड़ी के दर्शन' पर बहुत भरोसा करती थी। जब भी वह किसी बच्चे को छड़ी से मारती तब वह गुजराती की एक कहावत बोलती, जिसके समकक्ष हिंदी कहावत कुछ इस तरह कही जाती है 'छड़ी बाजे छम-छम, विद्या आवे धम-धम'। 4 ब की शिक्षिका सुश्री वी., एकदम उलट थी। वह अक्सर स्वीकार करती थी कि वह 'नरम' थी और जब भी वह 'बच्चों के चेहरों को देखती थी' तब 'दया का अहसास' करती थी। विद्यालय में वह इकलौती शिक्षिका थी जो अपनी कक्षा में छड़ी नहीं रखती थी और कोई मॉनीटर छड़ी लाने की कोशिश करता भी तो उसे हतोत्साहित करती थी। वह अक्सर मुझे और साथ-साथ बच्चों को भी कहती थी कि उसका यकीन इस बात में है कि 'बच्चों को मारना-पीटना बुरी बात है।' उसकी कक्षा के सभी बच्चों ने मुझसे कहा कि वे सभी शिक्षकों में से उसे सबसे ज्यादा पसंद करते थे क्योंकि वह मारती-पीटती नहीं थी। रोचक बात यह थी कि वे इसे उसकी एक कमजोरी के तौर पर भी देखते थे और 'अच्छी पढ़ाई' की कमी के साथ-साथ कक्षा में अनुशासनहीनता के कारण के रूप में इसका जिक्र करते थे।

कभी-कभी ऐसे एकदम दो अलग माहौलों का शोध करना बहुत ही मुश्किल नजर आता था :

अगर कक्षा 4 अ के अवलोकन का अनुभव, ताकत के सामने पूरी तरह से समर्पण और डर की वजह से गहरे में विचलित करता था, तो कक्षा 4 ब में लगातार होती गतिविधियों के बीच और कानों को बहरा कर देने वाले शोर के बीच बैठना भी कम परेशानी वाला काम नहीं होता था। दोनों ही हालातों में, एक तटस्थ अवलोकन-कर्ता की भूमिका को बरकरार रखना निस्सहायता का अहसास पैदा करता था... बच्चों को दिन-ब-दिन शारीरिक तौर पर व प्रतीकात्मक तौर पर जो हिंसा भुगतनी पड़ती है, उसके बहुत विस्तार से नोट्स लेने के बजाय क्या मुझे इन बच्चों के लिए सीखने को आनंददायक व सार्थक बनाने की कोशिश नहीं करनी चाहिए ? (फील्ड नोट्स, 14.10.94)

दोनों शिक्षिकाओं ने मुझे बताया कि वे 'मां की तरह मारती-पीटती और डांटती-फटकारती' हैं, लेकिन वे बच्चों से 'प्यार' भी उतना ही करती हैं। मर्द शिक्षकों के साथ बच्चों का मेलजोल थोड़ा अलग तरह का था, बहुत सारों का अपने गांव के विद्यालय का सीधा अनुभव था, जहां पर कोई 'शिक्षक नहीं सिर्फ सर' थे। बच्चे उन दोनों मर्द शिक्षकों से बहुत डरते थे क्योंकि वे बहुत 'कड़क' थे। जब भी कोई शिक्षक गैर-मौजूद होता, उनमें से एक मर्द शिक्षक कभी-कभार कक्षा में झांक लेता, उसके अपने शब्दों में, यह जानने के लिए कि 'सब कुछ ठीक-ठाक चल रहा है न'। आमतौर पर बाहरी दालान में नजर

आने वाले तात्कालिक सुराग बच्चों को पलक झपकते ही अपनी-अपनी जगहों पर पहुंचा देते थे।

संस्थागत व्यवस्थाएं

विद्यालय के दिन की आमतौर पर शुरुआत खेल के मैदान में होने वाली प्रार्थना सभा के साथ होती थी। हर कक्षा के लड़के व लड़कियां अलग-अलग पंक्तियों में बरामदे की ओर मुंह करके खड़े होते थे, जिसमें कक्षा 7 की छह या सात 'बड़ी' लड़कियां खड़ी होकर 'देशभक्तिपूर्ण' गीत गाती थीं। शिक्षक (ग्यारह औरतें, दो मर्द) भी बरामदे में खड़े होकर आपस में बातें करते रहते थे जबकि उनमें से एक या दो सभा की अध्यक्षता करने की अपनी 'बारी' संभालते थे। फिर बच्चे पंक्तियों में ही अपनी-अपनी कक्षा में जाते थे। शिक्षक की निगाहों के दायरे से बाहर होते ही पंक्तियां (खासतौर पर लड़कों की) तेजी से बिखरने लगती थीं, यद्यपि पहले तल्ले वाली कक्षाओं में जाने वाले बच्चों का सामना अक्सर कानून व व्यवस्था बनाए रखने के लिए तत्पर हाथ में छड़ी लिए मर्द शिक्षक से होता था।

कक्षाओं में शिक्षक के आने से पहले दोनों कक्षाओं- 4 अ तथा 4 ब में 'व्यवस्थित होने' के अलग-अलग प्रतिरूप दिखलाई पड़ते थे। दोनों ही कक्षाओं में मॉनीटर लड़की शिक्षकों के 'पेशागत औजारों' को मेज पर जमाती थी- 'पाठ-योजना' की डायरी, हाजरी रजिस्टर, पोंछनी, चॉक आदि। दरी-पट्टियां बच्चों द्वारा बिछाई जाती थीं। कक्षा 4 अ में यह काम मॉनीटर लड़की की पैनी निगाहों के तले किया जाता था, जो इस बात का पुख्ता इंतजाम करती थी कि शिक्षक के आने से पहले सभी बच्चे अपनी-अपनी 'वाजिब जगहों' पर बैठ जाएं; कक्षा 4 ब में, शिक्षक के आने से पहले, बिछाते वक्त दरी-पट्टियों के साथ खूब खिलवाड़ किया जाता था और उन्हें खिसकाया, घुमाया व झटकाया-फटकारा जाता था।

सभी तरह की संस्थागत व्यवस्थाओं में यौनिक या लैंगिक अलगाव हर जगह मौजूद था। जैसा कि पहले जिक्र किया जा चुका है, लड़के व लड़कियों की पंक्तियां हमेशा ही अलग बनती थीं। कक्षाओं में, लड़के व लड़कियां अलग-अलग बैठते थे, बीच वाला गलियारा वास्तविक और प्रतीकात्मक दोनों ही तरह का बंटवारा करता था- एक 'यौनिक चारदीवारी' वहां मौजूद रहती थी। चारदीवारी के पार छापामारी कभी-कभार होती थी और जब भी होती थी तब निश्चित तौर पर किसी झगड़े के बुनियाद पर होती थी; या तो खिलवाड़ होता था, जब निजी सामानों पर दावा किया जाता या भड़काने पर 'पलटकर वार करने' की कार्यवाही होती थी। जब कभी ये भिड़न्तें ज्यादा गंभीर रूप धारण कर लेती थीं, तब मॉनीटर दूसरी 'बाजू' के दोषी बच्चे को सजा देने के लिए 'पार करके जाता' था। विपरीत लिंग के साथ मेलजोल को लेकर बच्चों की व्याख्याओं के साथ-साथ कक्षा (और खेल के मैदान) के अंदर 'लैंगिक जगहों' का अभिप्रायः मेरे सभी अवलोकनों में छाया हुआ है।

यौनिक या लैंगिक बंटवारे पर आधारित सभी संस्थागत व्यवस्थाएं, विद्यालय के लैंगिक सामाजिक संरचना के 'सतही ढांचे', सिर्फ प्रशासनिक सुविधा का मामला होती है। लेकिन वे विद्यालय की रोजमर्रा की जिंदगी में लैंगिक भेदभावों को बढ़ाने के काम आती हैं। एक खास व्यवस्था कक्षा के हाजिरी रजिस्टर में लड़के और लड़कियों की अलग-अलग सूची का बना होना था, जिसकी एक अनिवार्य व्यवहारिक उपयोगिता विद्यालय बोर्ड को लैंगिक आधार पर मासिक हाजिरी के आंकड़े भेजना था। लड़के और लड़कियों की हाजिरी अलग-अलग ली जाती थी और उन्हें गैर-हाजिर बच्चों को अपने अपने लैंगिक वर्ग में अलग-अलग गिनना होता था :

4 ब का शिक्षक (लड़कों की तरफ देखते हुए) : कौन-कौन आज गैर-हाजिर है ?

(एक लड़की खड़ी हुई और उसने गैर-हाजिर लड़कियों के नामों को पुकारना शुरू किया। उसके पास बैठी लड़की ने उसे खींचकर नीचे बिठा दिया।)

लड़की की साथी : हम से नहीं। लड़कों से पूछा है।

(...)

शिक्षक : ठीक है। अब, लड़कियो बताओ।

रजिस्टर में बनी नामों की सूची के साथ जुड़े सभी रोजमर्रा के कामकाज लैंगिक बंटवारे के आधार पर किए जाते थे, जैसे कि परीक्षा के पर्चे व प्रगति पत्र बांटना, मौखिक परीक्षाएं आदि। कक्षा की रोजमर्रा की जिन्दगी में आमतौर पर घटने वाली हरेक सांसारिक घटना, कक्षा में लैंगिक श्रम के बंटवारे को मजबूत बनाती थी : लड़कियां लड़कियों की 'बाजू' वाले काम करती और लड़के लड़कों की 'बाजू' वाले।

लैंगिक तौर पर बंटे रोजमर्रा के कामकाजों से बच्चों का सामना (करीब-करीब सभी) सह-शिक्षा वाले विद्यालय में हर रोज होता है। लैंगिक फर्कों पर आधारित होने की वजह से कामकाज की व्यवस्थाएं लैंगिक भेदभाव और बच्चों में लैंगिकता की धारणा को वाजिब ठहराने के काम आती हैं। इस बात को पहचानना जरूरी है कि विद्यालय के सामाजिक संस्थान के अंदर इन रोजमर्रा के कामकाजों के जरिए, बच्चे घर की तुलना में ज्यादा औपचारिक तरीके और कर्मकांडीय तौर-तरीकों के साथ लैंगिकता का 'अहसास' कर पाते हैं।

कक्षा में श्रम का लैंगिक बंटवारा

विद्यालय के अंदर लैंगिक बंटवारे का वाजिबीकरण करने का एक दूसरा तरीका शिक्षकों द्वारा काम दिए जाते समय लैंगिक फर्क करने वाली व्यवस्था को अपनाना था। इस तरह के ज्यादातर काम ज्यादा वाचाल व आगे नजर आने वाले बच्चों को दिए जाते थे और उन बच्चों द्वारा किए जाते थे। ये बच्चे बिला शक तुलनात्मक तौर पर बेहतर पृष्ठभूमि से आते थे, जो कि उनके पहनावे व रहन-सहन में और पढ़ाई के प्रति उनकी 'गंभीरता' में नजर आता था (आमतौर पर वे बच्चे कक्षा में सबसे ऊंची पायदान पर बैठे मिलते थे); शायद इसी वजह से वे शिक्षकों द्वारा ज्यादा 'जिम्मेदार' के तौर पर पहचाने जाते थे।

काम

लड़के :

- लड़कों की देखरेख करना (मॉनीटर)
- विद्यालय के बाहर के कामों के लिए दौड़ लगाना (जैसे शिक्षक के लिए नाश्ता लाना, उनके घरों से सामान लाना)
- फर्नीचर उठाकर ले जाना
- दोपहर के भोजन के वक्त खाना खिलाना

लड़कियां :

- लड़कियों की देखरेख करना (मॉनीटर)
- कक्षा को साफसूफ करना, झाड़ू लगाना, शिक्षक की मेज व काला बोर्ड साफ करना
- शिक्षकों के रजिस्टर को अलमारी में रखकर ताला लगाना...
- आधी छुट्टी के बाद शिक्षक के चाय के कपों को वापस ले जाना
- पाठों को जोर-जोर से बोलकर पढ़ना
- बोर्ड पर सवाल-जवाब लिखना

अलग-अलग कामों को देने के बहाने श्रम का लैंगिक बंटवारा, लड़कियों को 'कर्तव्यपरायण बेटियों' और लड़कों को 'उपद्रव करने वाले बदमाश' की धारणा के इर्द-गिर्द मढ़कर लैंगिक द्विभाजन को बढ़ा-चढ़ा देता है। शिक्षकों के साथ मेरी बातचीत के दौरान इसे कई बार कहा गया, इसके साथ ही कक्षा में चिप्पियां लगाने का उनका प्रतिरूप भी यही था। बहुत से बच्चे, जिनमें लड़के-लड़कियां और खासतौर पर लड़के शामिल थे, कक्षा में 'काम' नहीं करवाए जाने पर अपनी उलझी-पुलझी वेदना व्यक्त करते थे, क्योंकि 'काम' निश्चित तौर पर कक्षा में उनकी मौजूदगी को 'दर्शाता' और अपने सहपाठियों के बीच उनके कद और ताकत को बढ़ाता था।

बालिगों की सत्ता पर आश्रित, जिम्मेदार और नमनशील इंसान के तौर पर ढाल देने वाले कामों के जरिए लड़कियों का घरेलूकरण किया जाता है। आरंभिक समाजीकरण के एकदम इसी तरह के प्रतिरूप में, खासतौर पर बचपन के आखिरी दौर में, (आनंदलक्ष्मी, 1994; दुबे, 1988; कान्हरे, 1989; सारस्वत व दत्ता, 1988) लड़कियों को ऐसे काम दिए जाते हैं, जिससे उनकी जिम्मेदारी का दायरा कक्षा और विद्यालय की चारदीवारी से घिरी जगहों में ही कैद रहता है और उनके सिर पर शिक्षक के संरक्षक अभिभावकत्व (जैसा कि 'शिक्षण' में होता है) की छत्रछाया बनाए रखता है जबकि लड़कों को विद्यालय का भवन छोड़ने की आजादी मिलती है।

लड़कियों की जिम्मेदारियों के इलाके उनके द्वारा घर पर किए जाने वाले कामों के विस्तार के तौर पर भी देखे जा सकते हैं। मेरे शुरुआती अवलोकनों में मुझे कक्षा में राज करती मातृसत्ता, जिसमें रोजमर्रा के निर्णयों और शारीरिक (और कभी-कभी प्रतीकात्मक) ताकत व नियंत्रण के बीचों-बीच लड़कियों को देखकर करीब-करीब मुबारक अहसास हुआ, लेकिन वक्त गुजरने के साथ-साथ और अवलोकन के आंकड़ों पर गहराई से आत्म-चिंतन करने से यह साफ होता गया कि 'प्रभारी' लड़कियों को सौंपी गई 'सत्ता' उनके घर के कामों और भाई-बहनों की देखभाल करने की घरेलू जिम्मेदारियों का ही विस्तार थीं।

4 ब कक्षा की लड़की मॉनीटर को धमाल (विद्यालय के सांस्कृतिक 'पाठ्यसामग्री' की एक खास स्वरलहरी, इसका जिक्र आगे किया जाएगा) को काबू में करने के मामले में लड़के व लड़कियों दोनों के ही द्वारा 'नाकाबिल' के तौर पर देखा जाता था, जबकि कक्षा 4 अ में उसी के समकक्षी लड़के गगन को विद्यालय के सभी शिक्षक और उसकी कक्षा के बच्चे एक 'आदर्श' मॉनीटर के तौर पर मानते थे। एक लड़के की टिप्पणी में घरेलूकरण की छुपी कार्यसूची सामने आ जाती है :

हमारा शिक्षक मॉनीटर को कहता है, तुम लड़की हो और कक्षा को चुप नहीं रख सकती ? गगन को देखो। (राजू, 10; 4 ब)

मॉनीटर बनी दोनों ही लड़कियां उम्र में बड़ी थीं और शारीरिक तौर पर भी दूसरे बच्चों से बड़ी थीं, जो कि उन्हें दीदी (बड़ी बहन) कहते थे। वे दोनों ही अपने परिवारों में सबसे बड़ी थीं। जीवन के दो क्षेत्रों में, कक्षा में बच्चों के प्रबंधन और घर के कामों में मां की सहायक व सहोदरों की देखभाल की भूमिका की जिम्मेदारियों के तौर पर 'एक काम को दो अलग-अलग जगहों पर करने' उनकी 'दीदी' की भूमिका' को बढ़ावा मिलता था :

मैं कई बार सोचता हूं कि देखभाल के लिए कोई दूसरा मॉनीटर बन जाए... मुझे यहां पर दिन भर पढ़ाना पड़ता है और घर जाकर घर के

काम करने पड़ते हैं। (गगन, 12 ; 4 अ)

जिन लड़कों को जिम्मेदारियां सौंपी जाती हैं, उनके विवरणों में भी आरंभिक समाजीकरण की अनुगूंजें सुनी जा सकती हैं :

हम शिक्षक के घर से चीजें लाते हैं...

लड़कियां सड़क पार नहीं कर सकतीं, उनके साथ दुर्घटना हो जाएगी, वे गिर जाएंगी।

हम ज्यादा सावधान रहते हैं, हमें इसकी ''आदत'' है। (संजय, 10½; 4 अ)

कक्षा के भीतर एक-दूसरे के प्रवेश के लिए वर्जित जगहें, लड़के व लड़कियों दोनों ही के द्वारा, सुरक्षित रखी जाती थीं। यद्यपि शिक्षक द्वारा दिए जाने वाले ज्यादातर काम कुछ ही 'जिम्मेदार' बच्चों द्वारा किए जाते थे, लेकिन एक आम-सी सहमति इस बात की नजर आती थी कि फलां जगह एक लैंगिक समुदाय के सभी सदस्यों द्वारा इस्तेमाल की जा सकती थी। ऐसी एकदम अलग-थलग सी लैंगिक जगहों को देखने का बच्चों का नजरिया कक्षा में शिक्षक के, लैंगिक बंटवारे को दिखलाने वाले शाब्दिक व अशाब्दिक संप्रेषणों से मजबूत होता था :

4 ब. शिक्षिका आधी छुट्टी के बाद थोड़ी देर से कक्षा में आया। उसने कक्षा में चारों और कुछ नापसंदगी के साथ देखा : उसमें चारों ओर कागज के टुकड़े व बचा-खुचा खाना बिखरा पड़ा था।

शिक्षिका : मैं कक्षा में इसलिए देर से आई ताकि तुम इसको साफ कर लो। (लड़कियों की ओर देखते हुए) तुमने इसे अब तक साफ क्यों नहीं किया ?

कक्षा की लैंगिक संस्कृति में ताकत के इस खेल में छुपा कभी खुशी कभी गम, नीचे दी गई घटना के विवरण में साफ झलकता है जो कि आमतौर पर हर रोज ही घटती रहती है :

4 ब. शिक्षिका (पाठ का परिचय देने के बाद) ठीक है, चांदना, तुम पढ़ो।

वसंत : मैडम, क्या मैं पढ़ सकती हूं।

(शिक्षिक ने उसकी बात पर कान नहीं दिया और अपना 'काम' करने लगी। चांदना की आवाज शोर-शराबे में बमुश्किल ही सुनाई पड़ रही थी। लड़के आपस में बात कर रहे थे व खेल रहे थे; लड़कियां अपनी-अपनी 'जगहों' पर बातचीत कर रही थीं।)

शिक्षिका (अपने काम से निगाहें उठाकर लड़कों की ओर देखा)

शिक्षिका (राजदीप से, जो कि शिक्षक के करीब वाली बेंच पर बैठा था और जिसकी पीठ कक्षा की ओर थी)

तुम सबने मेरी नाक में दम कर रखा है... स्मिता, यहां आओ।

(शिक्षिका स्मिता को कुछ गुलाब देती है जो कि वे अपने घर से दूसरी शिक्षिका के लिए लाई थी।)

शिक्षिका (लड़कियों की ओर देखते हुए) : यह पढ़ रही है और तुम बातें कर रही हो...

मंदर, तुम पढ़ो।

(मंदर बातचीत के बीच में अचानक पकड़ लिए जाने से हड़बड़ाया।)

शिक्षिका (वसंत से) : तुम पढ़ना चाहते थे ?

(वसंत कक्षा के सामने आ गया और उसने पढ़ना शुरू कर दिया। एक भी बच्चा ध्यान नहीं दे रहा... स्मिता अपने 'काम' की जगह से लौटी। वह वसंत के पास खड़ी हो गई और उसने वसंत की किताब में झांका, अपनी जगह पर गई, अपनी किताब लेकर आई, उसे सही पन्ने पर खोला, एक बार फिर ताक-झांक की कि वह कहां तक 'पहुंच चुका' है। उसने ज्यादा ऊंची आवाज में पढ़कर और शारीरिक तौर पर भी दोनों ही तरीकों से वसंत को किनारे धकेल दिया।)

शिक्षिका ने सिर उठाकर चारों ओर देखा।

शिक्षिका : स्मिता, तुम पढ़ो (वसंत को अपनी जगह पर लौटने का इशारा किया)।

भले ही शिक्षिका निर्देशित हों या न हों, भेदभावयुक्त व्यवस्था के 'सुराग' काफी असरकारक तरीके से बच्चों द्वारा जज्ब कर लिए जाते थे। मेरे साक्षात्कार एक इस्तेमाल न आने वाली कक्षा में होते थे, जिसके लिए हर रोज एक बेंच की तलाश करनी पड़ती थी। शुरुआत में शिक्षक लड़कों को कह देते थे कि वे एक बेंच खोज कर लाएं व कमरे में रख दें। साक्षात्कारों के कुछ सप्ताहों तक जारी रहने और शिक्षकों की विद्यालयी जिंदगी की हकीकत में से उसकी याद के धुंधला जाने के बाद, मुझे अक्सर किसी बच्चे को एक बेंच लाने के लिए कहना पड़ता था। मॉनीटर के अलावा सिर्फ एक या दो लड़कियां लैंगिक नियम-कायदों को खुलेआम तोड़ने की हिम्मत जुटा पाती और हकीकत में बेंच को उठाकर लाती हुई दिख जाती थीं; किसी भी हाल में, वे पहले से हक-शुदा लड़कों को किसी बेंच को लाने के लिए दौड़ भाग करते और उसे कमरे में पहुंचा देती थी। एक लड़की ने, जिससे कि मैंने बेंच लाने के लिए कहा, खिड़की के पास जाकर चुपचाप बाहर देखते हुए सविनय अवज्ञा दर्शाई। अंत में मैंने उसे कहा कि वह अपनी ही कक्षा के किसी लड़के से बेंच लाने के लिए कहे। वह अपनी जगह से नहीं सरकी। आखिरकार दो लड़के एक बेंच लेकर

आए। मैंने उससे पूछा कि वह बेंच क्यों नहीं लाई।

मैं उनसे बात नहीं करती...

मैंने कभी उनसे बात नहीं की, इसीलिए (शालिनी, 8; 4 अ)

दूसरी लड़की ने बताया, एक लड़के (उसका भाई) द्वारा बेंच को कमरे में लाने के बाद :

(तुम इसे अंदर लेकर क्यों नहीं आई ?)

मैं नहीं ला सकती... कोई नहीं देता... मेरे भाई ने कहा

कि वह ले आएगा। (नीला, 10; 4 अ)

सभी बच्चों ने मुझसे कहा कि कैसे लड़कियों को बोर्ड पर लिखने के लिए कहा जाता है क्योंकि उनकी लिखावट अच्छी होती है। (लड़कियों के बारे में माना यह जाता है कि वे 'साफ-सुथरी' होती हैं) मैंने कक्षा 4 ब के मॉनीटर वसंत से पूछा कि उसका 'काम' क्या था;

वसंत : मेरा काम लड़कों को चुपचाप बिठाए रखना है।

(तुम बोर्ड पर नहीं लिखते ?)

वसंत : नहीं। लड़कियां हमारी किताबों में लिखवाती हैं।

(क्यों ?)

वसंत : वे हमें नहीं जानने देते (क्या शिक्षक उन्हें लिखने के लिए कहते हैं) वे हमें लड़कों को चुपचाप बिठाने के लिए कहते हैं... शिक्षक कहते हैं कि उनकी लिखावट अच्छी है।

यद्यपि दोनों शिक्षकों ने मुझे बताया था कि ऐसे 'बच्चे' हैं, जिनमें लड़के व लड़कियां दोनों हैं, जिनकी लिखावट अच्छी है, लेकिन वे लड़कियां ही थीं जिन्हें लगातार बोर्ड पर लिखने के लिए बुलाया जाता था :

4 ब शिक्षक बोर्ड पर ''प्रश्न पत्र'' लिख रहे हैं। शिक्षक (आस-पास देखते हुए) : किसकी लिखावट अच्छी है ? तुम, चांदना, आओ और इसे लिखो।

और अच्छी लिखावट का अच्छा मानक वह खूंटा था जो लैंगिक बंटवारे के बीच लगा पड़ा था :

4 अ (लड़कों की तरफ देखते हुए) : देखो, लड़कियों ने कितना साफ-सुथरा लिखा है। तुम ऐसा क्यों नहीं लिख सकते!

धमाल : लैंगिकता और कक्षायी संस्कृति

विद्यालयी संस्कृति के शब्दकोश में धमाल एक रंग-बिरंगा शब्द है। शिक्षकों के लिए धमाल का मतलब अनुशासन संहिता को तोड़ना व उसका उल्लंघन करना होता था। इसके साथ ही यह शिक्षक के नजरिए में दरार भी पैदा कर देता था जिससे कि वे कक्षा को समग्रता में देखने के बजाय लड़के व लड़कियों से मिलकर बनने वाली व्यवस्था के तौर पर देखते थे। उदाहरण के लिए, खेलने के लिए सीढ़ियों से नीचे ले जाते वक्त, उनका प्रबंधन जुदा तरीके से किया जाता था क्योंकि लड़के धमाल करते थे इसलिए उनका खासतौर से निगाह रखने की जरूरत थी :

4 अ का शिक्षक : चलो बच्चों को खेलने के लिए ले चलते हैं।

4 ब का शिक्षक : ठीक है। तुम लड़कियों को ले जाओ। मैं लड़कों को ले जाता हूं।

शिक्षकों की निगाहों में लड़के धमाल के अहम मुजरिम होते थे। मेरे अवलोकनों की 'वर्गीय अध्ययन सामग्री' में कामकाजी वर्ग के बच्चों के लिए साझी अवमानना उजागर होती है, खासतौर पर लड़कों के लिए, जिन्हें 'दुष्ट' व जोखिम के तौर पर समझा जाता था। यह नजरिया उन पर तीखी व कर्कश चिप्पियां चिपकाने के जरिए मुखातिब होता था :

4 अ का शिक्षक (एक लड़के से) : निकम्मे का मतलब क्या होता है ?

ब : बेकार (किसी काम का नहीं)।

शिक्षक : हां। हम कह सकते हैं, क्या हम नहीं कह सकते कि, यह लड़का तो पूरी तरह से निकम्मा है या यह चीज पूरी तरह से निकम्मी है...

बच्चों के साथ अपनी पूरी (असली) हमदर्दी के बावजूद, 4 अ के शिक्षक द्वारा लड़कों को यह कहते हुए सुनना आम बात थी :

तुम्हें तो काम करना है, इसलिए तुम जानते हो कि तुम्हें तो विद्यालय आने की जरूरत ही नहीं है ! तुम तो विद्यालय आते ही क्यों हो ?

या अनुशासन के संदर्भ में

मैं तुम्हें बता रहा हूं, एक दिन तुम किसी न किसी को मारोगे !

अच्छे व्यवहार की उम्मीदों के कारण, लड़कियों को अक्सर आदर्श मानकों की याद दिलाई जाती थी :

अगर तुम ऐसा बरताव करोगी तो कक्षा का क्या होगा ? (4 ब का शिक्षक)

और इसी की अनुगूंज बच्चों की आवाजों में भी सुनाई पड़ती थी :

लड़कियां पढ़ने-लिखने में तेज होती हैं। उनके दिमाग ज्यादा तेज होते हैं। वे धमाल नहीं करतीं और चुस्त व चतुर होती हैं। (धीरज, 10 ; 4 अ)

सभी लड़कियां पढ़ने-लिखने में तेज होती हैं। मैं नहीं जानता कि ऐसा क्यों होता है। शिक्षक कहते हैं कि लड़कियां तो सभी अच्छी हैं और लड़के जीरो हैं। (सीमा, 10, 4 अ)

बहुत ही अलग संस्कृति वाली दो कक्षाएं विद्यालय के 'शासन' या लैगिंग नियमावाली के फैलाव या व्यापकता को मजबूती के साथ जायज ठहराती हैं। 4 ब में, जहां पर सामाजिक मेलजोल ज्यादा तात्कालिक तथा शिक्षक से कम नियंत्रित था, सतह से नीचे मौजूद लैंगिकता की गतिशीलता को देख पाना थोड़ा आसान होता था। रोचक बात यह थी कि 4 अ में यद्यपि बच्चे अपने लैंगिक दायरों में ज्यादा जकड़े हुए थे, फिर भी मेल-जोल के प्रतिरूप और बेशक मेलजोल के संदर्भों के बारे में बच्चों की समझ कक्षा 4 अ के बच्चों से अलग नहीं थी।

4 ब में लड़कियों ने अपनी ताकत व सत्ता को कक्षा में काम लेने के लिए 'नरम' मातृत्ववादी विचारों को अपना लिया था। चूंकि शिक्षक की मेज कमरे में लड़कियों की बाजू में थी, इसलिए लड़कियों को शिक्षक के साथ अनौपचारिक मेलजोल के ज्यादा मौके मिलते थे। शिक्षक का ध्यान खींचने के लिए लड़कियों में मची होड़ नजर आना आम बात थी, जब वे उसके लिए फूल या अपनी बनाई चीजें लाती थीं :

> 4 ब का शिक्षक (पोंछनी को देखते हुए, अपने-आप से जोर से बोलते हुए) यह पोंछनी तो फट गई।
>
> पहली लाइन में बैठी लड़की : मैं एक बना दूंगी और कल ले आऊंगी।

मातृत्ववादी विचारों को अपनाने का मतलब यह था कि 4 ब की लड़कियां जो उनको पसंद हो वह तब तक कर सकती थी, जब तक कि वे इस बारे में सावचेत रहतीं कि एक अच्छी कक्षा के तौर पर नजर आने के लिए जरूरी जगह संबंधी संतुलन की पवित्रता टूटे नहीं। लड़कियों की बाजू में जबरदस्त उद्योग फल-फूल रहा था- कागज मोड़कर खिलौने बनाने की कला यानी ओरिगेमी, बुनाई, क्रोशिए से की गई बुनाई, चित्र आदि। इसमें कोई शक ही नहीं था कि ये सब कल्पनाशील दाव-पेंच या चालें विद्यालय की रोजमर्रा की नीरस जिंदगी से जूझने में मददगार होती थीं।

शिक्षकों के साथ मेरे अनौपचारिक साक्षात्कारों में यह एकदम साफ था कि वे लड़कों के व्यवहार के बारे में 'प्राकृतिक सिद्धांत' को मानते थे ('परवरिश करने' की एक दलील वे हमेशा पेश करते थे कि लड़कों के पिता हमेशा बाहर रहते थे, इसलिए लड़के अनुशासित नहीं थे)। कक्षा 4 ब में लड़कों ने इस 'प्राकृतिक' या 'अंतर्जात' आक्रामक मर्दवाद की विचारधारा के साथ तालमेल बिठा लिया था। वे बहुत सारे कल्पनाशील शारीरिक खेलों में जुटे रहते थे- एक-दूसरे को धक्का देना, मुक्केबाजी, लात या ठोकर मारना आदि। लड़कों को एक-दूसरे पर हथियार भांजते हुए देखना आम बात थी- आमतौर पर उनके पास सिर्फ पेंसिल ही नहीं, बल्कि नाखून, परकार और यहां तक कि ब्लेड भी नजर आ जाती थी, जिसे वे किसी पुराने हमले का चुकारा करने, इंसाफ करने की तलाश में अपने घरों से ले आते थे। खासतौर पर दादानुमा बच्चे, एक या दो अमनपसंद बच्चों को अक्सर छेड़ते थे : 'हम जानते हैं कि तुम जुआ (ताश पर दांव लगाना) खेलते हो'- एक ऐसी गतिविधि जिसे सामाजिक तौर पर बुरा माना जाता है।

शिक्षक तथा मॉनीटरों की अनवरत निगरानी के चलते, 4 अ में इस तरह के मेलजोल के मौके बहुत सीमित थे। इसके साथ ही बच्चे बमुश्किल ही कभी पढ़ाई-लिखाई में मशगूल नहीं होते थे- और पढ़ाई-लिखाई का मतलब लिखना और ज्यादा लिखना- तो ऐसी गतिविधियों के लिए समय कम ही मिल पाता था। फिर भी, सबसे मुश्किल हालात में भी भरपूर मजा लेने का बच्चों का सीमाहीन सामर्थ्य ही था कि अपनी-अपनी जगहों को छोड़े बगैर भी वे अपने आस-पास के माहौल में छोटे-मोटे उलट-फेर करने की गुंजाइश निकाल ही लेते थे। इसमें कागज, पेंसिल व फुटपट्टी के इस्तेमाल से तस्वीरें बनाने व खेलने के अलावा बतकही, छेड़छाड़ और धौल-धप्पा शामिल था। बच्चों के सबसे ज्यादा 'नजर' आने वाले सामाजिक मेलजोल अपने मॉनीटर के साथ होते थे, जब वे अपने दौरे पर होते थे : पीछे से धौल-धप्पा लगाना, गाली-गलौच करना या कसम खाना और 'सजा' का प्रतिरोध करना।

विद्यालय सत्र के आखिर में कक्षा 4 ब की मॉनीटर शांति ने 'खड़े करने' (यह शिक्षक द्वारा दी गई सत्ता के लबादे को दर्शाता था) से इंकार कर दिया। यह लड़कों की धमाल से जूझ पाने में उसकी नाकामी का सार्वजनिक इजहार था।

हमारा शिक्षक डांटता-फटकारता नहीं है, इसलिए कोई भी चुपचाप नहीं बैठता। यहां तक कि वह खुद भी चिल्लाए नहीं, तो कोई भी नहीं सुनता। सब लड़के हरामी हैं... लड़कियां सुनती हैं, लेकिन लड़के नहीं सुनते... वे मुझे परेशान करते हैं। वे मुझे पीछे से मारते हैं।

4 अ के शिक्षक द्वारा लड़कों को मारने की अनुमति मिलने के बाद भी, उस कक्षा के मॉनीटर की भी यही कहानी है :

लड़के व लड़कियां दोनों ही धमाल करते हैं... (मॉनीटर ने लड़के और तीन लड़कियों के नाम बताए) लेकिन लड़कियां... एक बार शिक्षक ने उनको मारा था, उसके बाद वे नहीं करतीं, लेकिन लड़के परवाह नहीं करते... लड़के बहुत शोर मचाते और सुनते नहीं हैं।

बच्चों की निगाहों में अनुशासन की नियमावली का उल्लंघन करने के अलावा धमाल के कुछ दूसरे मतलब भी थे। बच्चों के विवरणों में आई लैंगिक अध्ययन सामग्री ऐसी थीमें सुझाती है जो कि रोजमर्रा के कक्षायी जीवन में लैंगिकता को गढ़ती है और उसमें धमाल की अहम भूमिका अदा करती हैं। धमाल की बच्चों द्वारा की गई व्याख्याएं विपरीत लिंग के साथ मेलजोल के साथ गहरा ताल्लुक रखती है।

सभी बच्चों ने मुझे बताया कि जो लड़के धमाल करते हैं, उनको शिक्षकों से ज्यादा डांट-फटकार खानी पड़ती है। शिक्षकों और मॉनीटरों दोनों की सत्ता की 'अवज्ञा' बच्चों की निगाहों में धमाल को रचती थी, लेकिन इसके मतलब के बीचों-बीच लैंगिक चारदीवारियों का उल्लंघन करना था : लड़के और लड़कियों दोनों की धमाल की समझ स्थानिक संतुलन के पवित्र नियम पर जोर देती थी, जो कि लैंगिक चारदीवारी को पार करने से भंग हो जाता था। लड़के और लड़कियों दोनों के लिए, मारना, धक्का देना, छेड़ना और गलियारे के आर-पार चीजें फेंकना कक्षा में धमाल को रचता था; बहुत से लड़कों ने 'छेड़े जाने' की बात कही, लड़कियां धमाल करती थीं (यह शायद इसलिए था क्योंकि इससे शिक्षक या मॉनीटर की दखलंदाजी का मांग उठती थी)। मॉनीटर का प्रवेश बच्चों की ओर से कोई तगड़ा आरोप लगाए जाने पर ही होता था : लड़कों की ओर से इस बात पर गुस्सा जाहिर किया जाता कि लड़की मॉनीटर लड़कियों का पक्ष लेती है और अक्सर आपस में ही खेलती हैं; लड़कियों की ओर से यह कहा जाता था कि लड़के मॉनीटर को नहीं कहा जाए फिर भी 'खड़ा हो जाता' था। इस बात पर सहमति थी कि लड़कियां कक्षा में बतकही में मशगूल होकर धमाल में भागीदारी निभाती थीं। यह नजरिया संभवतयाः शिक्षकों द्वारा बतकही के लिए लगातार लड़कियों की भर्त्सना करने से बना था।

कुछ लड़कों ने बताया कि लड़कियां पढ़ने-लिखने में अच्छी है क्योंकि वे धमाल नहीं करतीं (कुछ ने कहा 'मर्जी से'!), वे 'शांति' से बैठी रहती हैं।

> सभी लड़के धमाल करते हैं।
>
> (और तुम खुद ?)
>
> नहीं। मैं तो चुपचाप बैठी रहती हूं। (रीना, 10; 4 अ)

'हम' और 'वे' : लैंगिक जगहों में विपरीत लिंग के साथ मेलजोल

विद्यालय के बच्चों के ज्यादातर रवैये और लैंगिक 'रुख' घरों से ही उनके साथ चले आते हैं। फिर भी लड़के-लड़कियों की मिली-जुली गतिविधियों की एकदम से गैर-मौजूदगी और एक-दूसरे से अलग-थलग लैंगिक जगहों में ही जकड़े रहना, बच्चों के 'हम' और 'वे' के उन्मुखीकरण को बढ़ा-चढ़ा देते हैं और वे विपरीत लिंग के साथ मेलजोल के मौकों में रोड़ा अटकाते हुए और नई-नई संस्थान आधारित वर्जनाओं और पाबंदियों की सर्जना करते हैं। अपने सहपाठियों के साथ सामाजिक मेलजोल के संदर्भ में बच्चों के अवलोकनों का विश्लेषण इस मामले को उजागर करता है। कुछ ही बच्चों ने जिक्र किया कि विपरीत लिंग वाले उनके भाई-बहन या पड़ोसी के बच्चे उनके साथ खेलते हैं, यद्यपि उनमें से ज्यादातर न तो विद्यालय में आपस में बात करते हैं और न ही साथ-साथ खेलते हैं। इन विवरणों में अंतर्निहित थीम आरंभिक व विद्यालयी समाजीकरण के बीच निरंतरता को उजागर करती है। लड़के व लड़कियों दोनों ही के साथ किए गए साक्षात्कार इस बात को उद्घाटित करते हैं कि वे विपरीत लिंग के साथ मेलजोल को मुठभेड़ के ढांचे में देखते हैं जो कि लैंगिक चारदीवारी को पार करने के साथ मजबूती से जुड़ा हुआ है। धमाल के लंबे-चौड़े अनुष्ठान में 'बातचीत' और 'खेल' का फर्क धुंधला पड़ जाता है। मेलजोल के सबसे ज्यादा मामूली किस्म के उदाहरण 'बातचीत' और 'खिलवाड़' के तौर पर देखे गए, जैसे मॉनीटर को पीठ पीछे से मारने, और दूसरी 'बाजू' से अपने निजी सामानों को फिर से हासिल करने और उल्लंघन के लिए सहपाठियों की आलोचना को कक्षा के लैंगिक नियम-कायदों की अनुशासनात्मक अध्ययन सामग्री के तौर पर लिया जा सकता था। सहपाठियों का दबाव और निंदा या नापसंदगी विद्यालय के अंदर के लैंगिक बंटवारे को बरकरार रखने में अहम भूमिका अदा करती थी :

> मैं स्कूल में लड़कियों के साथ नहीं खेलता... लड़कियां रस्सी कूदती हैं और हम गेंद लपकने का खेल खेलते हैं...
>
> मेरा दोस्त कहता है कि चल हम दोनों वहां चलकर खेलेंगे। (सुनीत, 9; 4 अ, जो कि अपनी ही कक्षा की लड़की के साथ हर रोज अपने पड़ोस में खेलता है)

मैं दीपू के साथ खूब खेलती हूं (एक सहपाठी जो पड़ोस में ही रहता है)... लेकिन स्कूल में नहीं, क्योंकि वो कबड्डी खेलता है... मैं कबड्डी खेलना नहीं जानती और मेरी दोस्त (मॉनीटर लड़की) कहती है कि चल हम कुछ और खेलते हैं। (हर्षा, 8; 4 अ)

खेल के मैदान पर, लड़कियों द्वारा विद्यालय में हासिल लैंगिक जगह का उल्लंघन कर ज्यादा जगह कब्जा लेने पर लड़कों का रोष मैंने देखा। वह मर्दों के समाजीकरण के उसी पहलू को दर्शाता है जिसका जिक्र कुमार करते हैं (1986) :

(क्या तुम लड़कियों के साथ खेलते हो ?)

क्या ? लड़के कहेंगे कि लड़कियों के साथ खेलते हुए तुम्हें शर्म नहीं आती ? (प्रकाश, 10; 4 ब)

मैं अपने पड़ोस में लड़कियों के साथ खेलता हूं, लेकिन स्कूल में नहीं, क्योंकि लड़कियां हमारे बीच में आ जाती हैं और हमें उस जगह को छोड़कर किसी दूसरी जगह पर जाना पड़ता है... लड़कों के खेल में लड़कियों का क्या काम !! (रमेश, 9; 4 अ)

लैंगिक बंदिशों को कड़ाई के साथ बरकरार रखा जाता है- न सिर्फ जब शिक्षक खेल खिलाता है, बल्कि जब बच्चे खुद खेलते हैं तब भी। लड़कों व लड़कियों ने माना कि वे एक-दूसरे के खेलों को जानते हैं, उन खेलों को या तो उन्होंने अपने पड़ोसी बच्चों या भाई-बहनों से सीखा है या जैसा कि लड़कों के मामलों में था, जो उन्होंने कक्षा में शिक्षक की गैर-मौजूदगी के वक्त बाहर लड़कियों को खेलते हुए देखकर सीखे थे। लेकिन, खेल के मैदान पर आमतौर पर एक-दूसरे के खेलों को नहीं खेला जाता :

गांव के स्कूल में हम अक्सर कबड्डी खेला करते थे। यहां पर कोई नहीं खेलता तो मैं अकेली कैसे खेल सकती हूं (लड़कों के साथ) ? (नीता, 11; 4 अ)

अभिभावकों की मनाही और चर्चा का संदर्भ भी चारू (10; 4 अ) के शब्दों में सुना जा सकता है :

मेरी मां कहती है 'लड़कों के साथ कोई भी मेलजोल मत रखना'

(उनके कहने का मतलब क्या होता है ?)

ये मत करो, वो मत करो और उनके साथ घूमो फिरो मत... स्कूल में मैं सिर्फ अपनी सोसायटी (पड़ोस) के लड़कों से ही बात करती हूं।

(कौन ?) दीपू।

(तुम उससे बात करती हो ?) नहीं। वो मुझे मारता है सिर्फ तब।

(तब तुम क्या कहती हो ?)

मेरी बगल में बैठी मेरी दोस्त कहती है कि तुम हमें क्यों मार रहे हो ?

(तुम उसे नहीं कहती ?)

नहीं। मैं सिर्फ तभी कहती हूं अगर वह मारता है।

(और दूसरे लड़के ? अगर वे मारें तो ?)

नहीं।

(क्यों ?)

मुझे शर्मिन्दगी महसूस होती है।

लैंगिक जगहों की रचना वह पर्दा डालती है, जिसे कभी-कभी शिक्षक की गैर-मौजूदगी में उठा लिया जाता था :

लड़कियों में से कोई धमाल नहीं करती... नहीं, कुछ करती हैं। मैं उनके नाम नहीं जानता, लेकिन मैंने उन्हें तब देखा है जब शिक्षक वहां नहीं होता है। (गोविंद, 8½; 4 अ)

मैं लड़कियों के साथ खेलना पसंद नहीं करता। मेरी मां कहती है कि लड़कियों के साथ मत खेलना... (क्या तुम अक्सर खेलते हो ?)

नहीं, मैं नहीं खेलता... वहां अक्सर बहुत धमाल होती है। जब मैडम नहीं होती तब हम अक्सर खेलते हैं। (सत्येन, 9; 4 ब)

'बाजुओं' की तरफदारी

'बाजुओं' की वजह से लैंगिक भेदभाव वाले व्यवहार पैदा होते थे : बच्चों के सामाजिक मेलजोल में दरार विपरीत लिंग के वर्ग के 'दूसरेपन या अन्यता' को बढ़ा देती थी। कुछ बच्चों ने विपरीत लिंग के साथ मेल-जोल के संदर्भ में 'बाजुओं' के मुद्दे को उठाया :

मैं उनके (लड़कियों) के नाम नहीं जानता। मैं उस बाजू कोई ध्यान नहीं देता, मैं सिर्फ पढ़ाई में ध्यान देता हूं। (राजू, 10; 4 अ)

बहुत सारे बच्चे (उसने जिन नामों का जिक्र किया उनके अलावा) धमाल करते हैं। मैं उनके नाम नहीं जानती... हम लड़कियां एक बाजू में होती हैं और वे लड़के दूसरे बाजू में बैठते हैं।

(तुम साथ नहीं बैठते ?)

मैडम कहती है कि तुम बहुत ज्यादा झगड़ा करोगे ? और लड़के हमें मारेंगे। (पूजा, 10; 4 अ)

हम उस बाजू देखते तक नहीं। अगर मैं उधर देखने लगूंगा, तो लड़के मुझ पर बरस पड़ेंगे। (दीपक, 10; 4 ब)

विनय (8½; 4 ब) से बात करने के बाद मैंने उससे पूछा कि क्या वह मरियम को भेज देगा।

(क्या वह आएगी ?)

मैं नहीं जानता।

(पर तुम तो उसी की कक्षा में हो...)

हां, पर मैं उनके नाम नहीं जानता।

(तब क्या तुम शबनम को बुला सकते हो ? क्या वह आ

जाएगी ?)

हां।

(तुम उसे कैसे जानते हो ?)

मैंने उसे सभा में देखा था।

(क्या तुमने उससे बात की है ?)

नहीं।

(तुमने उसका नाम कैसे जाना ?)

(अधीरता से) मैडम हाजरी भरते वक्त बोलती है न !

कक्षा में 'बाजुएं' बनाई गई हैं ताकि धमाल कम से कम हो। लड़कों की बाजू दरवाजे से दूर है जो कि असल में उन्हें भाग छूटने से नहीं रोक पाती। बंदिशों के हटते ही कक्षा 4 ब में धमाल को रोकने की कोशिश में कक्षा की मॉनीटर शांति ने शिक्षक के साथ मिलकर, बाजुओं को एक-दूसरे तरीके से बनाया :

लड़के एक बाजू में बैठते हैं तो वे लड़कियों पर चीजें फेंकते हैं और उन्हें परेशान करते हैं। मैं सोचती हूं कि मैं उन्हें बीच में बिठाकर, दोनों तरफ लड़कियों को बिठा दूं तो वे हमें परेशान नहीं कर पाएंगे। और लड़कियां अक्सर अपने दोस्त के साथ बैठती हैं व बातें करती हैं तो शिक्षक ने कहा कि उनकी जगह बदल दो।

(और लड़के ?)

...वे अपनी अपनी जगह पर चले जाएंगे (अपने दोस्तों की बगल में)... अच्छे बच्चे अभी भी अपनी नई जगह पर बैठे हैं।

(कौन ?)

2-3 लड़के, मैं उनके नाम नहीं जानती, ...लड़कियों के नाम तो मैं जानती हूं, बहुत सारे लड़कों के नाम नहीं जानती... मैं उन सबसे बात करती हूं क्योंकि मैं मॉनीटर हूं...

इन दिनों बहुत ज्यादा धमाल नहीं हो रहा है क्योंकि 'हम' (लड़कियां) दोनों तरफ से देख सकती हैं।

'बाजुओं' की यह 'नई' व्यवस्था लैंगिकता व भौतिक जगह के बीच के संबंधों को उजागर करती है :

मुझे थोड़ा पसंद है, थोड़ा नापसंद है...

क्योंकि लड़के मारते थे।

(पहले ?)

हम पहले एक-दूसरे को नहीं जानते थे, अब जान-पहचान हो गई। (लीना, 10; 4 ब)

हम उन्हें अपने एकदम नजदीक पसंद नहीं करते, वे हम पर गिर पड़ती हैं... कल से, हम पहले की तरह बैठेंगे, मैडम ने बताया है (अमनदीप, 10)।

लड़कियां लड़कों को मारती हैं और लड़के लड़कियों को मारते हैं... वे अब ज्यादा बदमाशी कर सकते हैं। शिक्षक तीनों बाजुओं को नहीं देख सकता... अगर लड़कियां एक तरफ हों और लड़के दूसरी तरफ तो शिक्षक लड़कों की बाजू देख सकता है। (मनीषा, 10)

जब शिक्षक नहीं होता तब लड़कियां धमाल करती हैं...

इस तरह बैठने से और ज्यादा धमाल होता है। (अरविंद, 12)

यद्यपि विद्यालय में किए गए काम के दौरान मुझे कभी नजर नहीं आया, लेकिन शिक्षकों के साथ की गई बातचीत में यह बात उजागर हुई कि बंटवारा अक्सर सजा के तौर पर इस्तेमाल किया जाता है। बच्चों ने भी इस बात की तस्दीक की :

जब मैडम यहां नहीं होती, तब यह मॉनीटर बहुत बुरी है, यह अक्सर लड़कियों को लड़कों के पास बिठाती है, एक लड़का, एक लड़की।

(क्या मैडम भी ऐसा करती है ?)

नहीं। वह मारती नहीं है... वह लड़के व लड़कियों को साथ-साथ नहीं बिठाती... मैं सिर्फ अपनी सहेलियों के साथ बैठना पसंद करती हूं। (जसर, 9; 4 ब)

कक्षा-3 में हम अक्सर धमाल करते थे और शिक्षक हमें अक्सर इस तरह, एक लड़का व एक लड़की, बिठाते थे। लड़के व लड़कियां आपस में झगड़ते थे, लेकिन ज्यादातर आपस में ही झगड़ते थे... लड़के फिर अपनी-अपनी जगहों पर चले गए, कभी-कभी वे इस तरह बैठने पर भी धमाल करते हैं। (रीता, 10; 4 ब)

खेल के मैदान पर बाजुएं बनाने का मकसद यह होता था कि लड़के विद्यालय का भवन छोड़कर बाहर न चले जाएं। बच्चों ने बताया और हाव-भाव से इशारा भी किया कि लड़कों की बाजू विद्यालय के दरवाजे से उल्टी दिशा में थी।

शिक्षक लड़कों को खेल खिलाते हैं, हम लड़कियों को खेल खिलाते हैं।

(क्या होगा अगर तुम सबको खेल खिलाओ ?)

लड़कियां सुनती हैं लेकिन लड़के भाग जाते हैं। (गगन, 12; 4 अ)

लड़के लड़कियों को मारते हैं। इसीलिए शिक्षक उनको उस बाजू में खिलाते हैं। अगर हम (लड़के) खेलते हैं तो वहां पर शिक्षक जरूर होना चाहिए। (दीपू, 10½; 4 अ)

शिक्षक हमें उस बाजू में अलग खिलाते हैं। वे कहते हैं कि उन्हें यह पसंद नहीं है।

(क्या ?)

कि लड़के और लड़कियां साथ-साथ खेलें। (शिरीष, 12; 4 ब)

कक्षा में लैंगिक बंटवारा आपसी टकराहटों के स्तरों को नीचा रखने के काम आता है और शिक्षक को अपने विद्यालयी दिन के कामों को करने में समर्थ बनाता है। फिर भी, इस विद्यालय की किसी खास कक्षा के संदर्भ में, इसे लैंगिकताओं के भविष्य में आने वाली 'मुश्किलों' को 'टालने' के लिए जरूरी 'कटु आलोचना' के तौर पर भी देखा जा सकता थाः

उसमें (एक निजी माध्यमिक विद्यालय जिसमें कई सारे बच्चे जाने वाले थे)... मत पूछो क्या-क्या चीजें होती हैं। हम यहां पर बहुत कड़क हैं, हमने इसका पुख्ता इंतजाम कर रखा है कि लड़कियां किसी मुसीबत में न पड़ें। (प्रधानाचार्य)

मेरे साथ बातचीत में और साथ ही साथ अपने छात्र-छात्राओं के साथ बातचीत में शिक्षक अक्सर कहते थे कि लड़के-लड़कियों को भाई-बहनों की तरह 'रहना' चाहिए। 'समानता' यहां पर सांस्कृतिक संदेश नहीं है : पारिवारिक ताकत के ढांचों में बहनों का दर्जा दोयम या मातहत का है। कुछेक रीति-रिवाजों में से एक रक्षाबंधन, विद्यालय में मनाया गया जो अपनी बहनों की रक्षा करने के लिए भाइयों की प्रतिबद्धता और बहनों द्वारा भाइयों की सेवा किए जाने पर जोर देता है। औरत व मर्द के बीच बगैर किसी रिश्तेदारी के लैंगिकताओं के बीच मेलजोल को रक्षाबंधन जायज या वाजिब ठहराता है, खासतौर पर लड़कियों के लिए :

यहां एक लड़का है, परेश। मैं उससे बात करती हूं।
(तुम उससे किस बारे में बात करती हो ?)

कुछ नहीं। कुछ भी तो नहीं। मैं और मेरी दोस्त उसे भाई की तरह मानते हैं। हमने उसे राखी बांधी थी। (सुरमा, 9; 4 ब)

यह वाजिबीयत बेहद भुरभुरी या कमजोर और विरोधाभासों के बगैर नहीं थी और लड़कियां इसके साथ चतुराईपूर्ण व्यावहारिकता से तालमेल बिठाती थीं :

नीलेश (एक मॉनीटर लड़का) बहुत मारता है, लेकिन शिक्षक फिर भी कहते हैं कि उसके साथ भाई की तरह बरताव करो। उन्होंने लड़कियों के साथ बहनों की तरह बरताव करने के लिए लड़कों को कहा था। मैं लड़कों को भाई की तरह मानती हूं। (अमृत कौर, 9; 4 अ)

हम लड़कों को भाई की तरह मानते हैं। लेकिन वे हमें बहुत मारते हैं। ऐसे में हम सोचते हैं कि किस किस्म के भाई हैं ये ? तब हम पलटकर उनको पीट देते हैं। (शोभा, 10; 4 अ)

नतीजे

मैंने इस अध्याय में रोजमर्रा के विद्यालयी जीवन में लैंगिकता के मामले में, आपसी मेलजोल के संदर्भों में, बच्चों द्वारा दिए जाने वाले अर्थों को समझने की कोशिश की है। ये व्याख्याएं परिवार या समुदाय के भीतर लैंगिक भूमिकाओं और विद्यालयों के जरिए होने वाले लैंगिक समाजीकरण के बीच निरंतरता को रेखांकित करती नजर आती है। एक जरूरी चेतावनी का ख्याल रखना जरूरी है कि विद्यालय के भीतर किसी खास कक्षायी संस्कृति में संबंधों की खासियत लैंगिक समाजीकरण के जिन प्रतिरूपों को दिखाती हैं, वे शायद दूसरी 'किस्म' के विद्यालयों में न मिलें। लेकिन, इस बात की कल्पना बहुत दूर की कौड़ी नहीं है। शिक्षा संबंधी साहित्य यह सुझाता नजर आता है (पार्थसारथी, 1988) कि भारतीय सह-शिक्षा वाले विद्यालयों के बहुत से लड़के व लड़कियां अपनी कुछ आवाजों को कुछ हद तक इस अध्याय में सुन पाए होंगे। 'नृतत्वशास्त्रीय ब्यौरों' को देखने पर, फिर भी, कोई भी उन पेचीदा तरीकों को समझने की कोशिश कर सकता है जिनसे विद्यालय जैसे सामाजिक संस्थान में लैंगिकता गढ़ी व समझी जाती है। विद्यालय में बच्चों के सामाजिक अनुभवों की बुनावट में फैली लैंगिकता की मौजूदगी, और विद्यालय के रोजमर्रा के कामों के जरिए लैंगिक बंटवारे को वाजिब ठहराया जाना, हमें सतर्क करने के अलावा, इस अध्याय में सुनी गई आवाजें सिद्धांतों को गढ़ने में आने वाली मुश्किलों की तरफ इशारा करती हैं, जिससे कि ज्यादा लैंगिक समतावादी विद्यालयीकरण की ओर बढ़ने के लिए प्रगतिशील दखलंदाजी की जा सके, जिसमें लड़के व लड़कियों दोनों ही के लिए ज्यादा उद्धारक संभावनाएं हैं।

बच्चों के वैज्ञानिक अध्ययन से पछताते हुए, कवि विल्फ्रेड ओवेन यह टिप्पणी करने के लिए जाने जाते हैं कि हम बच्चों को सिर्फ तभी समझ सकते हैं जब हम खुशी के लिए उनका अध्ययन करते हैं (ओवेन व बेल, 1967)। यह सच है कि बच्चों से उनकी अपनी विद्यालयी जिंदगी के बारे में सुनना बेहद खुशी का अहसास देता है। लेकिन इन विवरणों को भारतीय समाज के लैंगिक संबंधों के व्यापक ढांचे में रखकर देखे जाने की जरूरत है। 'विवरणों की मिलावट' जैसा कि ब्रोमली हमें चेताते हैं, 'असली इंसानों की कहानियां... रोजमर्रा की जिंदगी की पेचीदगियों में राहत देती हैं।' (ब्रोमली, 1989)। खासतौर पर बच्चों के बचपन के आखिरी दौर में विपरीत लिंग के साथ मेलजोल के सामान्यीकृत मानकों के संदर्भ में, निजी की सामाजिक में और सांस्कृतिक की राजनैतिक में घुसपैठ की आवाजें बच्चों की इन आवाजों में सुनी जा सकती हैं। इन विवरणों के मूलाधार में विद्यालयीकरण के 'मूल्यों' के आस-पास केन्द्रित एक विमर्श है- भारतीय समाज में एक खास सामाजिक वर्ग व जाति एक लड़के की तरह और एक लड़की की तरह अलग-अलग सामाजिक अर्थों में विद्यालयीकरण होने और औपचारिक विद्यालयीकरण के जरिए ताकत के नियम-कायदों तक

अलग-अलग तरह से पहुंच बनने पर। विद्यालय जैसे सामाजिक संस्थानों में लैंगिक समाजीकरण की हमारी समझ उन पेचीदा तरीकों को नजरअंदाज करने का जोखिम नहीं उठा सकती, जिसमें कि विद्यालयी प्रक्रियाओं के जरिए इस तरह का विमर्श चलता है और ज्ञान के ऐसे ढांचे बनते हैं जिनकी मदद से बच्चे समाज में अपनी स्थिति को समझने की कोशिश करते हैं। ◆

संदर्भ :

यह अध्याय मेरे पी.एच.डी. के लिए किए जा रहे शोध के आरंभिक अवलोकनों पर आधारित था जिसे सिम्पोजियम ऑव सोश्यलाइजेशन, वडोदरा, दिसंबर 1995 को प्रस्तुत किया था। मैं प्रोफेसर टी. एस. सरस्वती का शुक्रिया अदा करना चाहती हूं जिन्होंने मुझे यह पर्चा लिखने और इससे जिंदगी में आने वाली तमाम किस्म की धमाल का मुकाबला करने के लिए प्रेरित किया। मैं सिम्पोजियम के सभी भागीदारों का उनकी बहुत ही रचनात्मक दखलंदाजियों के लिए शुक्रिया अदा करना चाहूंगी।

यहां पर काम में लिए गए आंकड़े, वडोदरा, गुजरात के एक सह-शिक्षा वाले नगर निगम के प्राथमिक विद्यालय में एक नृतत्वशास्त्रीय अध्ययन के फील्डवर्क के वक्त एक पूरे अकादमिक सत्र (1994-95) के दौरान इकट्ठे किए गए। चौथे दर्जे की दो कक्षाओं का भागीदारीपूर्ण अवलोकन किया गया। अध्ययन के आखिर में इन दोनों कक्षाओं में से 112 बच्चों (61 लड़कियां व 51 लड़कों; माध्य आयु : 10 वर्ष) का साक्षात्कार लिया गया। इन कक्षाओं के अवलोकन व दो शिक्षकों के साथ बच्चों के साथ नजदीकी मेलजोल ने मुझे विद्यालयी बच्चों की रोजमर्रा की सामाजिक असलियत को अंदर से (भले ही बालिगों की नजर से) देखने का मौका मिला। इस अध्याय में बच्चों के नाम बदल दिए गए हैं।

भाषान्तर : रविकांत तोषनीवाल

जन्म और कर्म

सब के सब
ब्रह्म से निकले

मुंह से ब्राह्मण
बांहों से क्षत्रिय
वैश्य जांघों से
पैरों से शूद्र निकले

अभेद से भेद की
शुरुआत हुई
पवित्र से छूआछूत की

मुंह बाहों से लड़े
बांहें जांघों से
जांघे पैरों से
सबके सब आपस में लड़े
टुकड़े-टुकड़े हुए
समाज के अंग

फिर मुंह बांहों से मिलकर
जगत को भकोसते और कोसते रहे
जांघें और पैर हाथों से
मेहनत कर
जगत को पालते-पोसते रहे। ◆

❑ गोरख पाण्डेय

प्रस्तुति : प्रभात